दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय सुरक्षितः 15.01.2024

निर्णय उद्घोषित: 01.04.2024

सि.वा.(मू.प.) सं. 186/1980

तरुण कुमार ..... वादी

द्वारा: श्री राजीव सक्सेना, श्री ईशान शहकर, श्री सौरभ राघव, अधिवक्तागण।

बनाम

अजय कुमार .....प्रतिवादी

द्वारा : सुश्री मालविका आर., सुश्री एकता शर्मा, सुश्री पूर्वा दुआ, अधिवक्तागण।
सुश्री नेहा टंडन प्रतिवादी सं. 2 हेतु अधिवक्ता।
श्री राजीव बहल, प्रतिवादी सं. 8 हेतु अधिवक्ता।

कोरमः
माननीय न्यायमूर्ति जसमीत सिंह

निर्णय

न्या., जसमीत सिंह

अंतर.आ. सं. 4643/2023

1. यह आवेदन सि.प्र.सं. के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत प्रतिवादी सं. 3 और 4 की ओर से वादपत्र को अस्वीकार करने की मांग करते हुए दायर किया गया है।

<u>संक्षिप्त पृष्ठ भूमि</u>

2. वर्तमान वादपत्र में, महत्वपूर्ण प्रार्थनाएँ इस प्रकार हैं:-

क) वादीगण के पक्ष में यह घोषणा करने के लिए एक डिक्री पारित की जाए कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 द्वारा विक्रय की गई पैरा 26 और 32 में विस्तृत संपत्तियों का कथित विक्रय शून्य है और यह किसी भी मामले में वादीगण के हित को आबद्ध नहीं करता और यह भी घोषणा करने के लिए एक डिक्री पारित की जाए कि अनुसूची में दर्शाई गई संपत्तियां एच.यू.एफ. की हैं।

ख) कि यह भी घोषित किया जाए कि वादीगण प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रतिवादी सं. 5 और 6 से लिए गए उक्त अवैध और शून्य लेन-देन और ऋणों से आबद्ध नहीं हैं।

ग) कि संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्तियों के विभाजन और अलग कब्जे का आदेश वादीगण के पक्ष में पारित किया जाए और वादीगण को मिताक्षरा हिंदू विधि के अनुसार उनका हिस्सा दिया जाए।

घ) कि उपरोक्त संलग्न अनुसूची "क" और "ख" में वर्णित और चित्रित विभिन्न व्यापारिक घरानों, प्रतिष्ठानों, संपत्तियों के

लेखे दिए जाने के लिए वादीगण के पक्ष में और प्रतिवादीगण के विरुद्ध एक प्रारंभिक डिक्री प्रदान की जाए।

3. वादीगण के अनुसार, वादीगण और प्रतिवादी सं. 1 से 4 तथा उनके पूर्वजों ने वैश अग्रवाल होने के कारण एक संयुक्त हिंदू परिवार ("एचयूएफ") बनाया था, जो मिताक्षरा हिंदू विधि द्वारा शासित है। वर्ष 1943 में एल. खेम चंद की मृत्यु के समय, एचयूएफ के पास भारत में विभिन्न अचल संपत्तियां और व्यवसाय थे। एचयूएफ द्वारा उक्त संयुक्त हिंदू परिवार फर्म के नाम पर और/या प्रतिवादी सं. 1 से 4 के व्यक्तिगत नाम पर एचयूएफ की आय और निधियों से विभिन्न अचल संपत्तियां खरीदी गईं।

4. वर्तमान मामले में, वाद दायर करने के समय, वादी सं.1 प्रतिवादी सं. 1 और वादी सं. 3 का अवयस्क पुत्र था और वादी सं. 2 प्रतिवादी सं. 1 और वादी सं. 3 की अवयस्क पुत्री थी। वादी सं. 3 का अपने तत्कालीन अवयस्क बच्चों, वादी सं. 1 और 2 के हितों के प्रतिकूल कोई हित नहीं है। सुविधा हेतु, एचयूएफ की वंशावली तालिका नीचे दी गई है: -

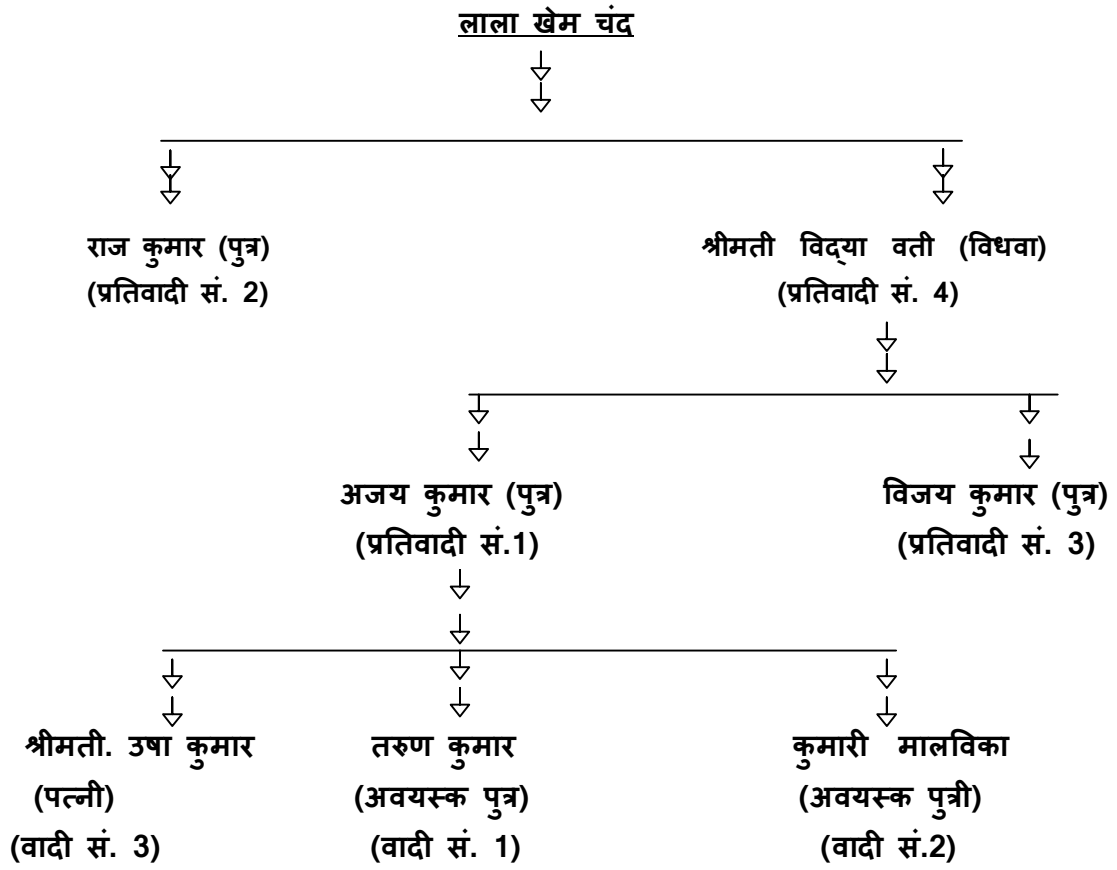

5. प्रतिवादी सं. 1 से 4 भारत और विदेशों में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न व्यापारिक नामों से विभिन्न व्यवसाय कर रहे हैं, और एचयूएफ के स्वामित्व वाले कुछ व्यावसायिक नाम "खेम चंद राज कुमार", "खेम चंद विजय कुमार", "शिव चंद स्टील रोलिंग मिल्स", "स्टील कॉर्पोरेशन ऑफ पंजाब", "खेम चंद अजय कुमार", "मालविका मशीन टूल्स" आदि हैं।

6. एल. खेम चंद के निधन के बाद, राज कुमार (प्रतिवादी सं. 2), परिवार का सबसे बड़ा पुरुष सदस्य होने के नाते, एचयूएफ के प्रबंधक और कर्ता

के रूप में कार्य करने लगा और एचयूएफ से संबंधित विभिन्न आय और निधियों के सभी लेखों का रखरखाव करने लगा।

7. प्रतिवादी सं.1 से 4 के पास विभिन्न व्यवसायों की सभी लेखा बहियाँ और अन्य रिकॉर्ड मौजूद थे और वे धन का दुरुपयोग कर रहे थे, लेखा बहियों में झूठी और काल्पनिक प्रविष्टियाँ कर रहे थे, स्टॉक हटा रहे थे, गुप्त बिक्री कर रहे थे और विभिन्न व्यवसायों से धन निकाल रहे थे जिससे वादीगण को उनके बकाया और एचयूएफ व्यवसायों और संपत्तियों में वैध शेयरों से वंचित किया जा सके। प्रतिवादी सं. 2 से 4 ने एचयूएफ की आय से अपने आश्रितों और अन्य व्यक्तियों के नाम पर आस्तियां बनाईं।

8. वर्ष 1973 में, प्रतिवादी सं. 1 ने अन्य प्रतिवादीगण सं. 2 से 4 के विरुद्ध लेखों के विभाजन और प्रतिदाय हेतु जालंधर में एक वाद दायर किया, जिसे 1973 के वाद संख्या 180 ("1973 का वाद") के रूप में दर्ज किया गया। वर्ष 1973 के वाद का बाद में प्रतिवादी सं. 1 द्वारा एक लाख रुपये की राशि और कुछ संपत्ति प्राप्त करने पर निपटान किया गया, जिसने पूरे भारत के लगभग सभी व्यवसाय घरों, चल और अचल संपत्ति को त्याग दिया।

9. यह आगे कहा गया है कि कथित विभाजन के मामले में तथा परिवार के उपरोक्त सदस्यों के बीच पहले हुए लेन-देन में वादीगण के हितों की

घोर उपेक्षा की गई। कथित विभाजन, भले ही हुआ हो, असमान, अनुचित और अविवेकपूर्ण था। न तो उक्त विभाजन और न ही उक्त पक्षकारगण के मध्य कोई लेन-देन अवयस्क वादीगण के हितों को आबद्ध कर सकता है या किसी भी प्रकार से प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है। आगे कहा गया है कि एचयूएफ अभी भी अस्तित्वयुक्त है और वादीगण विभाजन, घोषणा और लेखों के प्रतिपादन की राहत के हकदार हैं।

10. दिसंबर 1971 तक, वादीगण और प्रतिवादी सं. 1, जालंधर में एचयूएफ के अन्य सदस्यों के साथ अमरावती, टांडा रोड, जालंधर स्थित पैतृक घर में संयुक्त रूप से रह रहे थे, उसके बाद वे दिल्ली चले गए।

11. प्रतिवादी सं. 1 ने पैतृक निधि से वर्ष 1962 में बकौली गांव में भूमि खरीदी और बाद में पैतृक निधि से 12/1, मथुरा रोड, फरीदाबाद में एक फैक्ट्री शेड खरीदा।

12. प्रतिवादी सं. 1 ने मैसर्स खेम चंद अजय कुमार के नाम और शैली के अंतर्गत बैंक ऑफ इंडिया, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली (प्रतिवादी सं. 5) से भारी ऋण लिया। प्रतिवादी सं. 1 द्वारा उक्त फर्म को भागीदारी या हिंदू संयुक्त परिवार फर्म या एकमात्र स्वामित्व वाली फर्म के रूप में दर्शाया गया है, जबकि वास्तव में यह एक हिंदू संयुक्त परिवार फर्म है जिसका आयकर विभाग द्वारा इस प्रकार मूल्यांकन किया गया है।

13. प्रतिवादी सं. 1, हालांकि दृश्यतः अपने परिवार के साथ दिल्ली में बी-64, डिफेंस कॉलोनी, डी-174, डिफेंस कॉलोनी और फिर एस-110, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली में घर में रह रहा था, फिर भी प्रतिवादी सं. 1 ने अपना अधिकांश जीवन बाहर बिताया और वह लड़कियों की संगति में दिल्ली के होटलों और अन्य स्थानों पर रुका करता था। जब बैंक ऑफ इंडिया, प्रतिवादी सं. 5 ने प्रतिवादी सं. 1 को और अधिक वित्तीय सौकर्य देना बंद कर दिया, तो उसने एक अन्य बैंक, अर्थात् इंडियन बैंक, नीलम चौक, फरीदाबाद (प्रतिवादी सं. 6) से लगभग 1 लाख रुपये का और ऋण लिया और उसी परिसर में एक और उद्यम शुरू किया जो 12/1, मथुरा रोड, फरीदाबाद में है, जिसका नाम और शैली मालविका मशीन टूल्स है। उसने बिना किसी विधिक आवश्यकता या संयुक्त परिवार को किसी भी लाभ के बिना अवैध रूप से निम्नलिखित संपत्तियां बेच दीं:

(क) बकौली गांव में 34 बीघा 5 बिस्वा भूमि, दिल्ली राज्य तहसील: श्रीमती कमल चोपड़ा (प्रतिवादी सं. 7) को बेची गई।

(ख) टांडा रोड, जालंधर सिटी में म्यूनिसिपल नंबर बी VIII-215 वाली संपत्ति: अपने भागीदार श्री किशोरी लाल (प्रतिवादी सं. 8) के माध्यम से किशोरी लाल एंड ब्रदर्स को बेची गई।

14. प्रतिवादी सं. 1 ने बैंक ऑफ इंडिया (प्रतिवादी सं. 5), इंडियन बैंक (प्रतिवादी सं. 6) और अन्य से भी ऋण लिया। उसने उक्त संपत्तियों की बिक्री से प्राप्त पूरी राशि और प्रतिवादी सं. 5 और 6 से उधार ली गई राशि को जुआ, शराब पीने, रेस लगाने और विवाहेतर यौन संबंधों में लिप्त होने पर खर्च कर दिया। क्रेतागण, प्रतिवादी सं. 7 और 8, हमेशा से जानते थे कि उक्त संपत्तियां एचयूएफ संपत्तियां हैं और यह प्रतिवादी सं. 1 द्वारा बिना किसी विधिक आवश्यकता के बेची गई थीं। प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रतिवादी सं. 7 और 8 के पक्ष में उक्त संपत्तियों की कथित बिक्री वादीगण के हितों को आबद्ध नहीं करती है क्योंकि यह बिना किसी विधिक आवश्यकता के और अनैतिक उद्देश्यों के लिए की गई थी।

15. प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने बिना किसी विधिक आवश्यकता के, बिना किसी प्रतिफल के और/या अनैतिक उद्देश्यों के लिए निम्नलिखित संयुक्त परिवार की संपत्तियों का अन्यसंक्रामण कर दिया:

(i) मसूरी स्थित घर श्री राम कुमार गुप्ता, प्रतिवादी सं. 9 की पत्नी श्रीमती हीरा को बेचा गया।

(ii) जालंधर के टांडा रोड पर पुरानी ऑक्ट्रॉय पोस्ट के पास दुकानों और घरों से युक्त भवन, प्रतिवादी सं. 10, श्रीमती टेक चंद को बेचा गया।

16. ये सभी अन्यसंक्रामण अकृत और शून्य घोषित किए जाने योग्य हैं और किसी भी मामले में वादीगण पर आबद्धकर नहीं हैं। इन संपत्तियों के क्रेतागण प्रतिवादी सं. 1 से 4 के संबंधी हैं और उन्हें हमेशा इस तथ्य की जानकारी रही है कि ये संपत्तियां एचयूएफ संपत्तियां हैं और उन्होंने उक्त संपत्तियों को मामूली राशि में खरीदा है। वे यह भी जानते हैं कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 द्वारा किए गए विक्रय बिना किसी विधिक आवश्यकता के है। ऊपर वर्णित संपत्तियों का अन्यसंक्रामण विधिक आवश्यकता के बिना, बिना किसी प्रतिफल के और अनैतिक उद्देश्यों के लिए है, इसलिए ये वादीगण पर आबद्धकर नहीं हैं और इन्हें अपास्त करके अकृत और शून्य घोषित किया जा सकता है।

17. वादीगण द्वारा उक्त अन्यसंक्रामणों को अकृत और शून्य मानने और वादी सं. 1 द्वारा सभी एचयूएफ संपत्तियों और व्यवसायों का विभाजन करने की मांग पर, प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने आरोप लगाया कि संपत्तियों और व्यवसायों का विभाजन दिनांक 25 मार्च 1954, 25 मार्च 1957 और 19 जून 1961 के दस्तावेजों और प्रतिवादी सं. 1 द्वारा दायर 1973 के वाद के निर्णय के माध्यम से किया गया था। वादीगण द्वारा यह भी कहा गया है कि निर्णय और पहले के व्यवहार दुस्संधिपूर्ण, अनुचित, अविवेकपूर्ण, असमान और अवयस्क वादीगण के हितों के लिए अहितकर हैं और इस प्रकार वादीगण के लिए आबद्धकर नहीं हैं।

18. वाद में संपत्तियों में अवयस्क वादीगण के हितों की रक्षा करने तथा ऊपर वर्णित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, एचयूएफ संपत्तियों का विभाजन अवयस्क वादीगण के हित में तथा उनके लाभ के लिए होगा।

19. इस प्रकार, वादीगण एचयूएफ से संबंधित सभी संपत्तियों के विभाजन का दावा करते हैं, जिसमें प्रतिवादी सं. 7 से 10 द्वारा खरीदी गई संपत्तियां भी शामिल हैं, यह जानते हुए कि उक्त संयुक्त परिवार की संपत्तियों को बिना किसी विधिक आवश्यकता के, बिना किसी प्रतिफल के और अनैतिक उद्देश्यों के लिए इसका अन्यसंक्रामण कर दिया गया था। प्रतिवादीगण अन्यसंक्रामण को अकृत और शून्य मानने में विफल रहे हैं और उन्होंने संपत्तियों का विभाजन करने से इनकार कर दिया है और इसलिए एचयूएफ के स्वामित्व वाली विभिन्न संपत्तियों (चल और अचल दोनों) के विभाजन, घोषणा और लेखों के प्रतिपादन की मांग करते हुए वर्तमान वाद दायर किया गया है।

20. यह भी कहा गया है कि वादीगण को व्यवसाय से प्राप्त आय और किराये की आय आदि में से कोई हिस्सा नहीं दिया गया। वादीगण ने कभी भी व्यवसाय या किराये के संग्रह आदि में भाग नहीं लिया। इसके अलावा, वादीगण 12/1, मथुरा रोड, फरीदाबाद में एचयूएफ संपत्ति के एक हिस्से के वास्तविक भौतिक कब्जे में हैं।

21. वादी सं. 1 और 2 अवयस्क थे और अपने नाना के साथ रह रहे थे, जो दिल्ली में रहते थे, और कैम्ब्रिज स्कूल, श्रीनिवासपुरी में पढ़ रहे थे, और उनके लिए अपनी पढ़ाई विच्छिन्न किए बिना कहीं और वाद दायर करना संभव नहीं था।

22. संपत्तियों, व्यवसायों आदि से संबंधित सभी पुस्तकें और विवरण प्रतिवादी सं. 1 से 4 के कब्जे में हैं और इस प्रकार वादीगण यह अभिनिश्चित करने में असमर्थ हैं कि इस लेखे में उन्हें कितनी राशि बकाया मिलेगी। यद्यपि वादीगण का प्राक्कलन है कि लेखों के प्रतिदाय के बाद प्रतिवादी सं. 1 से 4 से उन्हें लगभग 1 करोड़ रुपये की राशि बकाया मिलेगी।

23. एचयूएफ संपत्तियों में वादी सं. 1 से 3 का हिस्सा 3/16 है, इसके अतिरिक्त वादी सं. 1 और 2 के विवाह के लिए भरण-पोषण और प्रावधान का अधिकार भी है।

24. सभी प्रतिवादीगण को नोटिस जारी किया गया और उसके बाद प्रतिवादी सं. 3 और 4 सहित प्रतिवादीगण की ओर से लिखित बयान दायर किए गए।

25. अब इस स्तर पर अर्थात् 43 वर्षों के बाद, सि.प्र.सं. के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत वादपत्र को अस्वीकार करने की मांग करते हुए

वर्तमान आवेदन दायर किया गया है, जबकि वादी का साक्ष्य दायर किया जा चुका है और प्रतिवादी का साक्ष्य प्रक्रिया में है।

<u>प्रस्तुतियाँ</u>

<u>(प्रतिवादी सं. 3 और 4 की ओर से)</u>

26. अपने आवेदन के समर्थन में, प्रतिवादी सं. 3 और 4 की विद्वान अधिवक्ता सुश्री राजकोटिया ने सबसे पहले वर्तमान वाद पर आपत्ति जताई क्योंकि इसमें 1973 के विभाजन के वाद को फिर से खोलने की मांग की गई है, जिसे सि.प्र.सं. के आदेश XXIII नियम 1 के अंतर्गत सहमति डिक्री द्वारा सुलझाया गया था। इस प्रकार, सि.प्र.सं. के आदेश XXIII नियम 3क के आधार पर, कोई नया वाद संधार्य नहीं है। इसके अलावा, आदेश XXIII नियम 1 के अंतर्गत एक समझौते से निकलने वाला एक आवेदन जालंधर में दायर किया गया था, इसलिए इसे यदि फिर से खोलना है, तो यह जालंधर में ही होना चाहिए। वादीगण ने दिल्ली में इसे दायर करके इससे बचने की कोशिश की है। ***मैसर्स श्री सूर्या डेवलपर्स एंड प्रमोटर्स बनाम एन शैलेश प्रसाद और अन्य, (2022) 5 एससीसी 736*** और ***यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज बनाम सरोज गुप्ता, (2021) 16 एससीसी 768*** पर निर्भरता व्यक्त की गई है।

27. उन्होंने वादपत्र के पैरा 19 की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया, जिसमें वादी का दावा है कि प्रतिवादी सं. 1, उसके पिता ने 1961 में हुए विभाजन में प्राप्त पैतृक संपत्ति के अपने हिस्से से दिल्ली में 2 संपत्तियां खरीदीं। वादपत्र में उपरोक्त तथ्यों के परिणाम इस प्रकार हैं:-

i. विभाजन 1961 में हुआ था जब वादी का जन्म ही हुआ था,

ii. 1973 के वाद का निपटान 1974 में उसके पिता द्वारा किया गया था, जब वे अवयस्क था और इसकी जानकारी उसकी मां को थी, जो एक वकील थी और वे उस समय एक परिवार के रूप में एक साथ थे।

iii. पैरा 34 में, वादी ने अनुचितता का स्पष्ट बयान देकर 1954, 1957, 1961 और 1974 की व्यवस्थापित संपदाओं को अपास्त करने की मांग की है। विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि अगर 1974 में रजिस्टर्ड विभाजन हुआ होता और न्यायालय की डिक्री से नहीं, तो यह वर्तमान आवेदन संधार्य नहीं होता, यद्यपि तथ्य यह है कि पिछले सभी विभाजन 1974 के वाद में समाप्त हो गए थे, जिसे प्रतिवादी ने जालंधर के न्यायालयों में व्यवस्थापित किया था, इसलिए उस समझौते को चुनौती देने या फिर से खोलने का अधिकार केवल जालंधर में ही बनाए रखा जा सकता है।

वादी ने स्वयं इस मामले में स्वीकार किया है कि 1973 का वाद समझौतावादी था, इसलिए सि.प्र.सं. का आदेश XXIII नियम 3 लागू हो जाता है और वर्तमान वाद आदेश XXIII नियम 3क के अंतर्गत वर्जित है क्योंकि उस समझौते के सवाल को तब तक चुनौती नहीं दी जा सकती जब तक कि कपट का आरोप न हो। इसके अलावा, अगर ऐसा है तो इसे केवल उसी न्यायालय में ही बनाए रखा जा सकता है।

28. विभाजन के वाद में हर पक्षकार वादी है। वादी का समर्थन करके अजय कुमार (प्रतिवादी सं. 1) भी वादी है, जो अपने पुत्र के साथ मिलकर उस मामले को फिर से खोलने की कोशिश कर रहा है, जिसे उसने 1973 में अपने पूरे मन से स्वीकार किया था। यह परिसीमा विधि द्वारा वर्जित है।

29. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि वादी मिताक्षरा विधि के मुद्दे को भ्रमित करने की कोशिश कर रहा है, जो 1956 से पहले केवल उत्तरजीविता के आधार पर था और इस प्रकार पुरुष उत्तराधिकारियों के साथ उतार-चढ़ाव वाले शेयरों को जन्म देता था। यद्यपि 1956 के बाद, उत्तरजीविता का नियम लागू हो गया और उसका सबसे अच्छा मामला केवल अपने पिता के विरुद्ध दावा करना है। यह स्थापित विधि है कि संयुक्त परिवार के मामले में, बच्चे केवल अपने माता-पिता की संपत्ति में हिस्सा पाने के

हकदार होंगे। ***रेवानसिद्दप्पा बनाम मल्लिकार्जुन***, (2023) 10 एससीसी 1 पर निर्भरता व्यक्त की जाती है और संबंधित पैरा इस प्रकार है: -

> *"30.1. एचएसए, 1956 की धारा 16(3) के अंतर्गत धर्मजत्व से आच्छादित बच्चों को पिता की शाखा के भीतर विभाजन के उद्देश्य से वैध माना जाना चाहिए। वे बड़ी सहदायिकी में विभाजन का दावा नहीं कर सकते, परंतु एक बार जब बड़ी सहदायिकी विभाजित हो जाती है - काल्पनिक रूप से या वास्तव में, और संपत्ति पिता के हाथों में आ जाती है, तो उसके सभी बच्चे - स्वयं वैध या धारा 16(3) के कारण वैध, पिता के हाथों में इस संपत्ति के विभाजन में समान अधिकार रखते हैं....."*

30. वह मेरा ध्यान इस न्यायालय द्वारा दिनांक 26.05.1983 को पारित आदेश की ओर आकर्षित करती है जिसमें यह अवलोकन किया गया था कि इस वाद का सार भरण-पोषण है और अन्यथा इसमें कोई गुणागुण नहीं है। इस प्रकार, भरण-पोषण का दावा भी उसके अपने पिता के विरुद्ध है और उसके चाचाओं, चचेरे भाइयों और विस्तारित परिवार के विरुद्ध नहीं हो सकता, जिनकी संयुक्त स्थिति विच्छिन्न हुई और संपत्ति भी विभाजित हो गई। इस प्रकार वादीगण के पास प्रतिवादी सं.

3 और 4 तथा अब उनके उत्तराधिकारियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई का कारण नहीं है।

(वादीगण की ओर से)

31. प्रतिवादी सं. 3 और 4 के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों का खंडन करने के लिए, वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री सक्सेना ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान आवेदन केवल इस आरोप पर आधारित है कि वाद को सि.प्र.सं. के आदेश XXIII नियम 3क के अंतर्गत वर्जित किया गया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 के बीच सि.प्र.सं. के आदेश 23 नियम 1 के अंतर्गत सहमति डिक्री पारित की गई है।

32. साथ ही प्रतिवादी सं. 1 द्वारा वर्ष 1973 में अपने भाइयों के विरुद्ध विभाजन हेतु वाद दायर किया गया था, जिसे उसके भाइयों से कुछ मामूली रकम लेकर वापस ले लिया गया था तथा जालंधर की तो बात ही छोड़िए, किसी भी न्यायालय द्वारा कोई डिक्री पारित नहीं की गई थी।

33. विद्वान अधिवक्ता ने माननीय खंड न्यायपीठ द्वारा पारित दिनांक 16.12.1983 के आदेश पर निर्भरता व्यक्त की जिसमें दिनांक 09.08.1974 के निर्मोचन विलेख के आधार पर किए गए कथित विभाजन को चुनौती देने के वादीगण के अधिकारों को बरकरार रखा गया था।

34. खंड न्यायपीठ द्वारा पारित उपरोक्त आदेश को माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष वि.अनु.या. (सि.) सं. 6444,5661/1984 दायर करके चुनौती दी गई थी जिसे दिनांक 26.11.1984 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस प्रकार, माननीय खंड न्यायपीठ द्वारा दिनांक 16.12.1983 को पारित आदेश अंतिम रूप से लागू हो गया और यह पक्षकारगण पर आबद्धकर है।

35. यह प्रस्तुत किया जाता है कि वादीगण के साक्ष्य दिनांक 19.08.2018 को समाप्त हो गए थे। इसके बाद, प्रतिवादी सं. 1 पर एकपक्षीय कार्यवाही की गई, जबकि प्रतिवादी सं. 2 का परीक्षण किया जाना था, यद्यपि, आवेदक के अनुरोध पर, प्रतिवादी सं. 3 का परीक्षण पहले किया गया। यद्यपि, उक्त साक्षी की मृत्यु दिनांक 11.02.2022 को हो गई और तब से कोई साक्ष्य पेश नहीं किए गए क्योंकि प्रतिवादीगण ने मामले में विलंब करने के लिए एक के बाद एक आवेदन दायर किए, जिसमें केवल आवेदक और प्रतिवादी सं. 2 का परीक्षण किया जाना शेष है।

36. उन्होंने आगे तर्क दिया कि इस माननीय न्यायालय ने दिनांक 23.9.1983 को कथित विभाजन के संबंध में मुद्दे विरचित किए थे और क्या वादीगण उक्त विभाजन को फिर से खोल सकते हैं या नहीं और इस संबंध में यह प्रमाणित करने का दायित्व दोनों पक्षकारगण पर

है। इसके अलावा, इस न्यायालय ने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के संबंध में भी मुद्दे विरचित किए हैं। प्रासंगिक मुद्दे इस प्रकार हैं:-

> *"6. वर्ष 1973 में जालंधर शहर के सिविल न्यायालय में अजय कुमार (प्रतिवादी सं. 1) द्वारा प्रतिवादीगण 2 से 4 के विरुद्ध दायर विभाजन वाद तथा कथित समझौते के आधार पर दिनांक 8 अगस्त, 1974 को उसके वापस लिए जाने का विधिक प्रभाव क्या है?*
>
> *... ...*
>
> *13. (क) क्या इस न्यायालय को इस वाद का विचारण करने का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार है?"*

37. आगे यह तर्क दिया गया है कि वादीगण इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित भरण-पोषण के हकदार हैं और उन्हें अभी भी प्रतिवादी सं. 2 द्वारा एचयूएफ निधि से भुगतान किया जा रहा है, और इस मामले में न केवल एचयूएफ का अस्तित्व माननीय न्यायालय द्वारा संदेह से परे प्रमाणित किया गया है, किंतु वादी के अधिकार, उपाधि, हित, दावे और शेयर के संबंध में भी प्रथम दृष्टया पात्रता संस्थापित की गई है और इस प्रकार उक्त अधिकार को किसी भी प्रकार से कम नहीं किया जा सकता।

<u>विश्लेषण और निष्कर्ष</u>

38. मैंने पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत परस्पर विरोधी प्रस्तुतियाँ सुनी हैं तथा अभिलिखित उपलब्ध तथ्यों का परिशीलन किया है।

39. सि.प्र.सं. के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत आवेदन पर निर्णय लेने के संबंध में विधि सुस्थापित है। ***दहीबेन बनाम अरविंदभाई कल्याणजी भानुसाली, (2020) 7 एससीसी 366*** में माननीय उच्चतम न्यायालय ने विधि का सारांश दिया है और प्रासंगिक अंश इस प्रकार है: -

> *"23.3. आदेश 7 नियम 11(क) का अंतर्निहित उद्देश्य यह है कि यदि किसी वाद में, किसी वाद-हेतुक का प्रकटन नहीं किया जाता, या नियम 11(घ) के अंतर्गत वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है, तो न्यायालय वादी को वाद में कार्यवाही को अनावश्यक रूप से लंबा खींचने की अनुमति नहीं देगा। ऐसे मामले में, मिथ्या मुकदमे को समाप्त करना आवश्यक होगा, जिससे आगे न्यायिक समय बर्बाद न हो।*
>
> *23.4. अज़हर हुसैन बनाम राजीव गांधी [अज़हर हुसैन बनाम राजीव गांधी, 1986 सप एससीसी 315. मानवेंद्रसिंहजी रणजीतसिंहजी जडेजा बनाम विजयकुंवरबा, 1998 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 281: (1998) 2 जीएलएच 823 में अनुसरण किया गया] इस न्यायालय ने*

अभिनिर्धारित किया कि इस प्रावधान के अंतर्गत शक्तियों को प्रदान करने का पूर्ण उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि एक मुकदमा जो अर्थहीन है, और निष्फल प्रमाणित होने के लिए आबद्ध है, उसे न्यायालय के न्यायिक समय को बर्बाद करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, निम्नलिखित शब्दों में: (एससीसी पृष्ठ 324, पैरा 12)

> *"12. ... ऐसी शक्तियों को प्रदान करने का पूर्ण उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि जो मुकदमा निरर्थक है और जिसके निष्फल प्रमाणित होने की संभावना है, उसे न्यायालय का समय लेने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और प्रतिवादी के दिमाग का उपयोग नहीं करना चाहिए। डैमोकल्स की तलवार को बिना किसी प्रक्रम या उद्देश्य के अनावश्यक रूप से उसके सिर पर लटकाए रखने की आवश्यकता नहीं है। यहां तक कि एक साधारण सिविल मुकदमे में भी, न्यायालय सरलता से वादपत्र को अस्वीकार करने की शक्ति का प्रयोग करता है, यदि उसमें किसी वाद-हेतुक का प्रकटन न किया गया हो।"*

23.5. यद्यपि, सिविल मामले को समाप्त करने के लिए न्यायालय को दी गई शक्ति बहुत कठोर है और आदेश 7 नियम 11 में उल्लिखित शर्तों का सख्ती से पालन किया जाना आवश्यक है।

23.6. आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत, न्यायालय पर यह कर्तव्य है कि वह यह निर्धारित करे कि क्या वाद-पत्र में दिए गए प्रकथनों की जांच करके, जिन दस्तावेजों पर निर्भरता व्यक्त की गई है उनके साथ पढ़कर, वाद-पत्र कोई वाद हेतुक प्रकट करता है या नहीं, या क्या वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है।

....

23.10. इस स्तर पर, लिखित बयान में प्रतिवादी द्वारा दिए गए अभिवचनों और गुणागुण के आधार पर वादपत्र को अस्वीकार करने के लिए आवेदन, अप्रासंगिक होंगे, और उन पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है, या उन पर विचार नहीं किया जा सकता है। [सोपान सुखदेव साबले बनाम चैरिटी कमिश्नर, (2004) 3 एससीसी 137]

23.11. आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने के लिए परीक्षण यह है कि यदि वाद-पत्र में किए गए

प्रकथनों को संपूर्णता में लिया जाए, तो जिन दस्तावेजों पर निर्भरता व्यक्त की गई है, उनके साथ संयोजन में, क्या उसी के परिणामस्वरूप डिक्री पारित की जाएगी। यह परीक्षण लिवरपूल और लंदन एसपी एंड आई एसोसिएशन लिमिटेड बनाम एमवी सी सक्सेस I [लिवरपूल और लंदन एसपी एंड आई एसोसिएशन लिमिटेड बनाम एमवी सी सक्सेस I, (2004) 9 एससीसी 512] में निर्धारित किया गया था, जो इस प्रकार है: (एससीसी पी 562, पैरा 139)

> *"139. क्या वादपत्र में वाद हेतुक का प्रकटन किया गया है या नहीं, यह अनिवार्य रूप से तथ्य का प्रश्न है। किंतु किया गया है या नहीं, इसका पता वाद-पत्र को पढ़कर ही लगाया जाना चाहिए। उक्त उद्देश्य के लिए, वाद-पत्र में किए गए प्रकथनों को पूर्ण रूप से सही माना जाना चाहिए। परीक्षण यह है कि यदि वाद-पत्र में किए गए प्रकथनों को पूर्ण रूप से सही माना जाता है, तो क्या डिक्री पारित की जाएगी।"*

23.12. हरदेश ओर्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम हेडे एंड कंपनी [हरदेश ओर्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम हेडे एंड कंपनी, (2007) 5 एससीसी 614] में न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया

कि एक वाक्य या गद्यांश को अलग करना और उसे अलग से पढ़ना स्वीकार्य नहीं है। यह सार है, न कि केवल रूप, जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वादपत्र को उसी रूप में समझा जाना चाहिए, जिसमें वह है, शब्दों को जोड़े या घटाए बिना। यदि वादपत्र में आरोप प्रथम दृष्टया वाद हेतुक दर्शाता है, तो न्यायालय यह जाँच नहीं कर सकता कि क्या आरोप वास्तव में सही हैं। डी. रामचंद्रन बनाम आर.वी. जानकीरमन [डी. रामचंद्रन बनाम आर.वी. जानकीरमन, (1999) 3 एससीसी 267; विजय प्रताप सिंह बनाम दुख हरण नाथ सिंह, एआईआर 1962 एससी 941 भी देखें]।

....

23.14. सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा वाद के किसी भी चरण में किया जा सकता है, या तो वाद-पत्र दर्ज करने से पहले, या प्रतिवादी को समन जारी करने के बाद, या विचारण के समापन से पहले, जैसा कि इस न्यायालय ने सलीम भाई बनाम महाराष्ट्र राज्य [सलीम भाई बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2003) 1 एससीसी 557] के निर्णय में अभिनिर्धारित किया है। यह अभिवचन कि एक बार मुद्दे विरचित हो जाने के

बाद, मामले को अनिवार्य रूप से विचारण में जाना चाहिए, इस न्यायालय ने अजहर हुसैन मामले में खंडन कर दिया था [अजहर हुसैन बनाम राजीव गांधी, 1986 सप एससीसी 315। मानवेंद्रसिंहजी रंजीतसिंहजी जडेजा बनाम विजयकुंवरबा, 1998 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 281: (1998) 2 जीएलएच 823]....."

40. उपरोक्त उद्धृत निर्णय से यह स्पष्ट है कि सि.प्र.सं. के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत किसी आवेदन पर निर्णय लेते समय केवल वादपत्र और उसमें दिए गए प्रकथनों पर ही विचार किया जाना चाहिए। न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या वादपत्र में किसी वाद हेतुक का प्रकटन किया गया है या वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है और यदि वादपत्र आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत किसी भी श्रेणी में आता है तो वादपत्र अस्वीकार किया जा सकता है।

41. प्रतिवादी सं. 3 और 4 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह वाद संधार्य नहीं है, क्योंकि यह सि.प्र.सं. के आदेश XXIII नियम 3क द्वारा वर्जित है और सहमति डिक्री पारित होने के बाद वादीगण वाद को पुनः नहीं खोल सकते।

42. साथ ही प्रतिवादी सं. 1 ने प्रतिवादी सं. 2 से 4 के विरुद्ध विभाजन और लेखों के प्रतिदाय हेतु वाद दायर किया था। वाद के लंबित रहने के

दौरान, प्रतिवादी सं. 1 ने सि.प्र.सं. के आदेश XXIII नियम 1 के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया, जिसमें इस आधार पर वाद वापस लेने की मांग की गई कि वाद कुछ अन्यथाग्रहण के कारण दायर किया गया था और विभिन्न दस्तावेजों को देखने के बाद, प्रतिवादी सं. 1 पहले हुए विभाजन से संतुष्ट था। उक्त आवेदन का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार है:-

"2. कि उपरोक्त वाद वादी द्वारा कुछ अन्यथाग्रहण और तथ्यों के गलत मूल्यांकन के कारण दायर किया गया है। वादी ने अब कुछ दस्तावेजों को देखा है जिनका उल्लेख प्रतिवादीगण ने अपने-अपने लिखित बयानों में किया है और जिनकी प्रतियां न्यायालय में दायर की गई हैं। इन दस्तावेजों और संबंधित लेखा बही तथा अन्य स्रोतों से की गई पूछताछ को देखने के बाद वादी पूर्ण रूप से संतुष्ट है और बिना किसी शर्त के स्वीकार करता है कि मैसर्स खेम चंद राज कुमार का संयुक्त हिंदू परिवार वर्ष 1954 में आंशिक रूप से और मार्च 1967 में पूर्ण रूप से विच्छिन्न हो गया था, जब एक पारिवारिक समझौता हुआ था जिसके द्वारा प्रतिवादी सं. 1 श्री राज कुमार ने तत्कालीन संयुक्त हिंदू परिवार के शेष सदस्यों अर्थात् वादी और प्रतिवादी 2

और 3 से स्वयं को अलग कर लिया था और तब से श्री राज कुमार का मैसर्स खेम चंद राज कुमार के उक्त तत्कालीन संयुक्त हिंदू परिवार के साथ कोई संबंध या हित नहीं था और तब से वह उक्त पारिवारिक समझौते में उसे आवंटित संपत्ति के एकमात्र कब्जे में है, जिसका उल्लेख व्यवस्थापन विलेख दिनांक 26.3.57 में किया गया है। वादी ने यह भी स्वीकार किया है कि मार्च, 1957 में उक्त पारिवारिक समझौते की मौजूदगी में विभिन्न निर्मोचन विलेख और दस्तावेज निष्पादित किए गए थे। वादी ने यह भी स्वीकार किया है कि वादी सं. 1 और प्रतिवादी 2 और 3 के बीच दिनांक 19 जून, 1961 को एक और विभाजन हुआ था और वादी और प्रतिवादी 2 और 3 के बीच निर्मोचन पारिवारिक समझौते के विलेख निष्पादित किए गए थे और तब से वादी प्रतिवादी 2 और 3 से अलग है। प्रतिवादीगण के लिखित बयानों में संदर्भित विलेखों की तथ्यात्मकता और वैधता को स्वीकार किया जाता है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह प्रार्थना की जाती है कि वादी के वाद वापस लेने को अनुज्ञात किया जाए, किंतु वादी पर जुर्माने का बोझ न डाला जाए।"

43. दिनांक 08.08.1974 के आदेश के अंतर्गत जालंधर स्थित विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"अजय कुमार वादी के बयान को ध्यान में रखते हुए, वाद वापस लेते हुए खारिज किया जाता है और पक्षकारगण को अपने जुर्माने स्वयं उठाने के लिए छोड़ दिया जाता है। यहां यह स्पष्ट किया जा सकता है कि स्टांप लेखा परीक्षक ने अपने निरीक्षण के दौरान फाइल पर इस आशय का एक नोट दर्ज किया था। वाद के वादपत्र पर 7196/- रुपये मूल्य का न्यायालय शुल्क स्टांप चिपकाया जाना आवश्यक था। यह नोट स्टांप लेखा परीक्षक द्वारा अभिलिखित किया गया था।

इस आधार पर कि वादी ने सोचा था कि राशि के भुगतान के बाद उसे जो अनुमानित राशि मिलनी चाहिए, उसका उल्लेख वादपत्र में पाँच लाख रुपये के रूप में किया गया था। नोट स्पष्ट रूप से गलत है। यह सामान्य ज्ञान का प्रश्न है कि पहली बार में वादी को उस राशि पर न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए नहीं कहा जाता है जो उसके लेखों के विवरण के अनुसार देय होगी। लेखों के विवरण के लिए वाद में वादी को उस राशि पर न्यायालय

शुल्क का भुगतान करने के लिए कहा जाता है जो अंतिम निर्णय के समय प्रतिवादीगण से उसे देय पाई जाती है।

इन परिस्थितियों में स्टाम्प लेखा परीक्षक की टिप्पणी की अनवेक्षा करने का अनुरोध किया जाता है।

फाइल को अभिलेख कक्ष में परेषित किया जाए।"

44. माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***रामा नारंग बनाम रमेश नारंग, (2006) 11 एससीसी 114*** और विशेष रूप से पैराग्राफ 23 में निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"23. ... ... समझौता डिक्री उतनी ही डिक्री है जितनी कि न्यायनिर्णयन पर पारित डिक्री। यह केवल पक्षकारगण के मध्य एक समझौता नहीं है जैसा कि निशा कांतो रॉय चौधरी [एआईआर 1948 कैल 294: 49 क्रि एलजे 567] में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा गलत तरीके से अभिनिर्धारित किया गया है। सहमति से डिक्री पारित करने में, न्यायालय सहमति में अपना अधिदेश जोड़ता है। सहमति डिक्री में आदेश और संविदा दोनों शामिल होते हैं। बंबई उच्च न्यायालय का बजरंगलाल गंगाधर खेमका [एआईआर 1950 बॉम 336: 52 बॉम एलआर 363] में दृष्टिकोण सही ढंग से कानून का प्रतिनिधित्व करता है कि

सहमति डिक्री न्यायालय की अनुमति के साथ एक संविदा है। "इम्प्रिमेटर" का अर्थ है "प्राधिकृत" या "अनुमोदित"। दूसरे शब्दों में, सहमति आदेश के संदर्भ में डिक्री पारित करके न्यायालय सहमति से की गई कार्रवाई को प्राधिकृत और अनुमोदित करता है। इसके अलावा, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3 के प्रावधानों के अनुसार न्यायालय को सहमति की शर्तों के अनुसार डिक्री पारित करना तभी आवश्यक है जब न्यायालय की संतुष्टि के लिए यह प्रमाणित हो जाए कि किसी वाद को किसी वैध समझौते द्वारा पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से समायोजित किया गया है।"

45. दिनांक 08.08.1974 के आदेश के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि पारित आदेश में केवल यह कहा गया है कि वाद को सि.प्र.सं. के आदेश XXIII नियम 1 के अंतर्गत वापस ले लिया गया है। आदेश XXIII नियम 3 के अनुसार, विचारण न्यायालय द्वारा कोई संतुष्टि अभिलिखित नहीं की गई है कि वाद को पक्षकारगण के मध्य हुए वैध समझौते या समझौते के आधार पर डिक्री किया गया है। सि.प्र.सं. के आदेश XXIII नियम 3 के अंतर्गत कोई डिक्री पारित नहीं की गई है, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि 1973 के वाद में सहमति डिक्री पारित की गई थी और

इसके अभाव में, सि.प्र.सं. के आदेश XXIII नियम 3क का वर्जन लागू नहीं होगा। इसलिए, वर्तमान वाद को इस आधार पर विधि द्वारा वर्जित नहीं कहा जा सकता है।

46. ***मैसर्स श्री सूर्या डेवलपर्स एंड प्रमोटर्स (पूर्वोक्त)*** पर निर्भरता व्यक्त करना गलत है, क्योंकि इस विशेष मामले में, पक्षकारगण के मध्य दिनांक 30.12.2015 को हुए समझौता विलेख के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित समझौता डिक्री के संबंध में कोई विवाद नहीं था, जबकि 1973 के वाद में, जालंधर में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा कोई समझौता डिक्री पारित नहीं की गई है।

47. इसके अलावा, ***कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय (पूर्वोक्त)*** पर निर्भरता व्यक्त करना भी सहायक नहीं है क्योंकि मामला उसी वादी से संबंधित है, अर्थात् जिस वादी ने पहले वाद दायर किया था, उसने ही बाद का वाद भी दायर किया था। वर्तमान मामले और 1973 के वाद में वादीगण अलग-अलग हैं।

48. वाद-पत्र का अर्थपूर्ण अध्ययन दर्शाता है कि वादीगण का मामला यह है कि कथित विभाजन, यदि हुआ भी था तो अनुचित, असमान और अविवेकपूर्ण था। वादीगण के हितों की घोर उपेक्षा की गई। इसलिए, वादी ने प्रकथन किया कि एचयूएफ संपत्तियों और व्यवसायों की आय से उन्हें कोई हिस्सा नहीं दिया गया था।

49. इसके अलावा, वादीगण अवयस्क और सहदायिक होने के नाते एचयूएफ संपत्तियों की परिसंपत्तियों में अधिकार रखते हैं और वादीगण के पक्षकार बने बिना ही इसका निपटान कर दिया गया है। यदि पूर्ण रूप से प्रकथनों को सही माना जाता है, तो वादीगण एचयूएफ संपत्तियों में से अपना हिस्सा लेंगे और इस पर केवल विचारण के बाद ही न्यायनिर्णयन किया जा सकता है।

50. इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने दिनांक 16.12.1983 के आदेश में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

> *" ... . प्रथम दृष्टया वह विभाजन को चुनौती देने का हकदार है क्योंकि निर्मोचन विलेख जो कि दिनांक 09 अगस्त, 1974 को प्रतिवादीगण द्वारा निष्पादित रिकॉर्ड पर एकमात्र पंजीकृत दस्तावेज है, या इसमें संदर्भित और अजय कुमार द्वारा पुष्टि किए गए पहले के कार्य तरुण कुमार या उनके हिस्से का उल्लेख नहीं करते हैं जो उन्हें सहदायिक के रूप में मिलना चाहिए। श्री बावा सही हैं जब वे आग्रह करते हैं कि तरुण कुमार का विभाजन फिर से खोलने का अधिकार इस बात के प्रमाण पर निर्भर करता है कि यह अनुचित या अन्यायपूर्ण था या वादीगण के हितों के लिए अहितकर था। जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने*

अभिनिर्धारित किया है कि उन सवालों का निर्णय पक्षकारगण द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य पर किया जाना है। ... ."

51. उपरोक्त आदेश को माननीय उच्चतम न्यायालय में वि.अनु.या. (सि.) सं. 6444, 5661/1984 दायर करके चुनौती दी गई थी जिसे दिनांक 26.11.1984 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसलिए खंड न्यायपीठ द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों ने अंतिमता प्राप्त की।

52. प्रतिवादी सं. 3 और 4 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि वादीगण का दावा उनके पिता अर्थात् प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध सर्वोत्तम हो सकता है तथा प्रतिवादी सं. 3 और 4 के विरुद्ध कोई राहत का दावा नहीं किया जा सकता।

53. वादपत्र में कहा गया है कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने बिना किसी विधिक आवश्यकता के, बिना किसी प्रतिफल के और/या अनैतिक उद्देश्यों के एचयूएफ संपत्तियों अर्थात् मसूरी स्थित घर और जालंधर के टांडा रोड स्थित भवन को क्रमशः प्रतिवादी सं. 9 और 10 को अन्यसंक्रांत कर दिया। इस संबंध में, वादी ने मांग की है कि उपरोक्त संपत्तियों के संबंध में विक्रय विलेख को अकृत और शून्य घोषित किया जाए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***अर्शनूर सिंह बनाम हरपाल कौर, (2020) 14 एससीसी 436*** में कहा है कि सहदायिक संपत्ति का विक्रय विधिक

आवश्यकता और संपत्ति के लाभ के लिए होना चाहिए और इसे प्रमाणित करने का दायित्व अलग किए गए व्यक्ति पर है। प्रासंगिक अंश इस प्रकार है: -

"8.1. यह स्थापित विधि है कि सहदायिक संपत्ति को विक्रय करने की कर्ता की शक्ति कुछ प्रतिबंधों के अधीन है, जैसे कि विक्रय विधिक आवश्यकता के लिए या संपदा के लाभ के लिए होना चाहिए। [विजय ए. मित्तल बनाम कुलवंत राय, (2019) 3 एससीसी 520: (2019) 2 एससीसी (सिविल) 176; मुल्ला ऑन हिंदू लॉ (22वां संस्करण), पृष्ठ 372.] विधिक आवश्यकता के अस्तित्व को स्थापित करने का दायित्व अन्य संक्रांती पर है। रानी बनाम सांता बाला देबनाथ [रानी बनाम सांता बाला देबनाथ, (1970) 3 एससीसी 722] में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि: (एससीसी पृष्ठ 725, पैरा 10)

"10. विक्रय का समर्थन करने के लिए विधिक आवश्यकता को यद्यपि अन्य संक्रांतियों द्वारा संस्थापित किया जाना चाहिए। सरला के पास विवादित भूमि का स्वामित्व सीमित स्वामी के रूप में था। वह विधिक आवश्यकता या संपत्ति के

लाभ के लिए संपत्ति में संपूर्ण संपदा का निपटान करने में सक्षम थी। यह न्यायनिर्णयन करने में कि क्या विक्रय संपूर्ण संपदा को हस्तांतरित करता है, संपदा पर वास्तविक दबाव, टाले जाने वाले खतरे और विशेष उदाहरण में संपदा को दिए जाने वाले लाभ पर विचार किया जाना चाहिए। विधिक आवश्यकता का अर्थ वास्तविक विवश करना नहीं है: इसका अर्थ संपदा पर दबाव है जिसे विधि में गंभीर और पर्याप्त माना जा सकता है। विधिक आवश्यकता को प्रमाणित करने का दायित्व अन्य संक्रांती द्वारा वास्तविक आवश्यकता के प्रमाण या इस बात के प्रमाण के द्वारा समाप्त किया जा सकता है कि उसने आवश्यकता के अस्तित्व के बारे में उचित और सद्भावपूर्ण जांच की और उसने आवश्यकता के अस्तित्व के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने के लिए वह सब कुछ किया जो उचित था।"

54. ***रेवनसिदद्प्पा (पूर्वोक्त)*** में दिए गए प्रस्ताव के संबंध में कोई विवाद नहीं है। तर्क के लिए यह मान लेना कि मांगी गई राहत केवल प्रतिवादी

सं. 1 के विरुद्ध हो सकती है, न कि प्रतिवादी सं. 3 और 4 के विरुद्ध, इससे एक विलक्षण स्थिति पैदा होगी। वर्तमान मामले में, वादीगण उन संपत्तियों के विक्रय विलेखों को अपास्त करने की मांग कर रहे हैं, जिन्हें एचयूएफ संपत्तियां बताया गया है और जिन्हें प्रतिवादी सं. 1 से 4 द्वारा संयुक्त रूप से बेचा गया है। यदि वाद की डिक्री वादीगण के पक्ष में दी जानी है, तो विक्रय विलेखों को अकृत और शून्य घोषित करना होगा, और इसलिए, वादीगण भी उस संपत्ति में हिस्सा पाने के हकदार होंगे। उक्त घोषणा उनकी (प्रतिवादी सं. 3 और 4) अनुपस्थिति में नहीं दी जा सकती क्योंकि प्रतिवादी सं. 3 और 4 के हिस्से प्रभावित होंगे।

55. इस न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के संबंध में, वादपत्र में कहा गया है कि पैतृक निधि से प्रतिवादी सं. 1 ने वर्ष 1962 में बकौली गांव में भूमि खरीदी और बाद में पैतृक निधि से प्रतिवादी सं. 1 ने 12/1, मथुरा रोड, फरीदाबाद में एक फैक्ट्री शेड खरीदा। यह भी कहा गया है कि बकौली गांव, तहसील दिल्ली की भूमि बिना किसी विधिक आवश्यकता के प्रतिवादी सं. 7 को बेच दी गई थी। इसके अलावा, प्रतिवादी सं. 1 ने मैसर्स खेम चंद अजय कुमार के नाम पर बैंक ऑफ इंडिया, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली (प्रतिवादी सं. 5) से ऋण लिया था, जिसकी फर्म को हिंदू संयुक्त परिवार फर्म के रूप में दिखाया गया है। यह भी कहा गया

है कि प्रतिवादी सं. 2, 3, 4, 5, 7 और 8 दिल्ली में लाभ के लिए काम करते हैं और वादी सं. 1 और 2 अवयस्क होने के कारण दिल्ली में रहने वाले अपने नाना के साथ रह रहे हैं। अत: इस न्यायालय के पास प्रादेशिक क्षेत्राधिकार होने के संबंध में महत्वपूर्ण प्रकथन हैं तथा वादहेतुक इस न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत उद्भूत हुआ है।

<u>निष्कर्ष</u>

56. उपरोक्त कारणों से, मुझे आवेदन में कोई गुणागुण नहीं दिखता और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

57. यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियां केवल इस आवेदन पर निर्णय लेने के उद्देश्य से हैं तथा वाद पर अंतिम निर्णय लेने में बाधा नहीं डालेंगी।

<u>सि.वा. (मू.प.) सं. 186/1980</u>

58. संयुक्त निबंधक के समक्ष दिनांक 09.07.2024 को आगे की कार्यवाही के लिए सूचीगत।

न्या. जसमीत सिंह,

1 अप्रैल, 2024/(एमएसक्यू)

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में* निर्णय *का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*